चम्पा पधारे। चम्पानगरी में पूर्वभद्र नामक चैत्य था। यह चैत्य नगर से बाहर जंगल में था। प्रभु महावीर का समवसरण वहीं लगा।[६]

वहां का राजा दत्त था। उसकी रानी रक्तवती थी। राजा व रानी विशाल शोभा यात्रा के साथ प्रभु महावीर के दर्शन को आए। प्रभु महावीर का प्रवचन सुना। प्रवचन सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने प्रभु महावीर से प्रार्थना की- "प्रभु! मैं साधु बनने में असमर्थ हूं, अभी आप मुझे श्रावक के व्रत प्रदान करें।"

प्रभु महावीर ने कहा- "देवानुप्रिय! जैसी आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो परन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।"

उसके कुछ समय के पश्चात् प्रभु महावीर पुनः चम्पा पधारे। राजकुमार महाचन्द्र ने माता-पिता की आज्ञा से संयम स्वीकार किया। ग्यारह अंगों का स्वाध्याय किया। अन्त में एक मास का अनशन कर वह मृत्यु को प्राप्त हुए और सौधर्मकल्प में देवरूप में उत्पन्न हुए।[७]

पंजाब के राजा उदायन की दीक्षा

उस समय सिन्धु-सौविर के अंतर्गत पंजाब की सीमा आ जाती थी। उसके आगे अर्ध-केकय देश था जिसमें कश्मीर, गंधार का क्षेत्र पड़ता था। कुरु देश की सीमा अम्बाला जिला तक थी और यह मेरठ जिले में समाप्त होती थी। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। इसी तरह का वर्णन सिन्धु सौवीर देश का है। पहले यह एक देश था जिसकी राजधानी वीतभय पत्तन थी। पर प्रभु महावीर के बाद सिन्धु देश अलग हो गया और सौवीर अलग। सिन्धु नदी दोनों की प्राकृत विभाजित रेखा थी। प्राचीन वीतभय पत्तन आज का भैरा है जो आजकल पाकिस्तान में पड़ता है।

प्रभु महावीर के समय वहां का राजा उदायन था। उसके विस्तृत राज्य के बारे में शास्त्रकार कहते हैं-

सोलह बृहद् देश, तीन सौ तिरेसठ नगर और आगर उसके अधीन थे। उदायन वहां का राजा था। चण्डप्रद्योतन आदि दस मुकुटधारी महापराक्रमी राजा उसके अधीन थे।[८] वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक की सुपुत्री प्रभावती उसकी महारानी थी। अभीचिकुमार उसका पुत्र था और केशीकुमार उसका भानजा था।[९]

प्रभावती स्वयं निर्ग्रंथों की सेविका थी। उसने श्राविका के व्रत ग्रहण किए हुए थे।[१०] अपने जप-तप के प्रभाव से मरकर वह देवलोक में उत्पन्न हुई थी। उसने अपने पति को प्रतिबोध देकर श्रमणोपासक बनाया था। वह जीव अजीव का ज्ञाता हो गया था। इससे पहले राजा तापसों का भक्त था।[११]

एक समय राजा अपनी पौषधशाला में बैठा धर्म आराधना कर रहा था। रात्रि के समय धर्म जागरण करते समय उसके मन में विचार उठे- वह ग्राम-नगर धन्य हैं जहां प्रभु महावीर पधारते हैं। यदि किसी समय प्रभु महावीर मेरी नगरी को पवित्र करें, तो मैं उनके चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण कर लूंगा।"

प्रभु महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर थे। उनसे संसार के किसी जीव की बात छिपी नहीं थी। प्रभु महावीर का जन्म ही मानव जाति के उद्धार के लिए हुआ था। उस समय प्रभु महावीर चम्पानगरी में विराजमान थे। उन्होंने उदायन के मनोगत भावों को जाना। कहते हैं भक्त के वश में भगवान होता है। यह उक्ति सत्य सिद्ध हुई। प्रभु महावीर अपने भक्त का उद्धार करने उसके घर चल पड़े।

चम्पा से लेकर वीतभय पत्तन का रास्ता ७०० कोस का उग्र विहार था। भीषण गर्मी थी। कई-कई योजनों तक गांवों का नामोनिशान नहीं था। भोजन-पानी, साधु-साध्वियों को मिलना असंभव था।

शायद प्रभु महावीर का यह सबसे लम्बा भ्रमण था। प्रभु महावीर विहार कर रहे थे। शिष्यों को भूख-प्यास सता रही थी। उस समय तिलों से भरी गाड़ियां जा रही थीं। गाड़ी वालों ने कहा- "आप इन तिलों को खाकर भूख मिटाइए।"

प्रभु महावीर ने अपने शिष्यों को ऐसा भोजन स्वीकार करने से मना कर दिया। इसका प्रमुख कारण था यद्यपि तिल साधु के लेने योग्य थे, पर यह भिक्षा साधु के ४२ दोषों की मर्यादा पूरी नहीं करती थी। फिर तिल अचित्त थे इस बात को स्वयं जानते थे। अन्य छद्मस्थ मुनि श्रमण इनको कैसे अचित्त समझते?

यदि आज मैं इन तिलों को लेने की आज्ञा देता हूं तो भविष्य में इस घटना को सामने रखकर सभी साधु सचित्त तिल भी लेने लगेंगे। फिर आगे बढ़े एक जल का बृहद् सरोवर था। उसमें जो पानी भरा था, मिट्टी के सहयोग से स्वयं अचित्त हो गया था। साधु इसे भी काम में ले सकते थे। पर प्रभु महावीर ने इसे भी लेने की आज्ञा प्रदान नहीं की क्योंकि सभी सरोवरों का पानी अचित्त नहीं होता। आज इस सरोवर के पानी का उपयोग साधुओं को करने दिया जाए, तो भविष्य में भी अन्य सचित्त जल सरोवरों के पानी का उपयोग भी प्रारम्भ हो जाएगा। प्रभु महावीर के इन्कार करने का मुख्य यही कारण था।[२]

यह निश्चय धर्म से भी बढ़कर व्यवहार धर्म पर चलने की ओर आदेश था। इस पर अनेक परीषह-उपसर्ग आ रहे थे। प्रभु महावीर अनेक कष्टों को सहते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ते में योग्य भिक्षा के अभाव के कारण अनेकों मुनिराज स्वर्ग सिधार गए।[३]

शिवपल्ली की रेतीली भूमि में कोसों तक बस्ती का नामोनिशान न था। भगवान महावीर उसी बीहड़ मार्ग से पूर्व की ओर जा रहे थे। कोमल शरीर वाले शिष्यों को यही गर्मी मृत्यु का कारण बन रही थी।

गौतम द्वारा किसान को प्रतिबोध

वीतभय नगरी के रास्ते में चलते चलते गणधर गौतम इन्द्रभूति ने एक किसान को हल जोतते देखा। किसान बूढ़ा हो चुका था। उसके बैल उससे भी ज्यादा बूढ़े थे। वह हल का भार भी सहन नहीं कर पा रहे थे। वह काम करने में असमर्थ थे। किसान इसी कारण से बैलों को पीट पीटकर चमड़ी उधेड़ रहा था।

प्रभु महावीर ने अपने प्रथम शिष्य इन्द्रभूति को आदेश दिया- "जाओ, उन बैलों को पीटते किसान को धर्म-उपदेश दो।" गणधर गौतम ने प्रभु महावीर की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वह किसान के पास आए और अपने मधुर स्वर में कहा- "भद्र! तू इन बैलों को क्यों पीट रहा है? क्या इन्हें कष्ट नहीं होता?"

किसान ने गणधर गौतम को प्रणाम करने के पश्चात् कहा- "बाबा! आपसे ज्यादा मुझे इन्हें पीटते कष्ट हो रहा है। यह बैल तो मेरी जान हैं, मुझे बेहद प्रिय हैं। पर मेरे पास दूसरी जोड़ी नहीं। यह बूढ़े होने के कारण नहीं चल पा रहे हैं। अगर ये न हों तो मैं और मेरा समस्त परिवार भूखा मर जाए।"

गौतम स्वामी को किसान की दशा पर करूणा आ गई। उन्होंने किसान को निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनाया। निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रभाव से वह किसान गणधर गौतम का शिष्य बन गया। उसने अहिंसा का मार्ग पर चलने का व्रत लिया।

अब दोनों गुरू शिष्य बन गए। गणधर गौतम ने कहा- "चलो भद्र! हम अपने प्रभु के दर्शन करने चलें।"

दोनों प्रभु महावीर के समवसरण की ओर बढ़ने लगे। दूर से उस किसान ने प्रभु महावीर को देखा। प्रभु महावीर को देखते ही किसान पर भयंकर क्रोध का आवेश छा गया।" गौतम स्वामी ने कहा- यह

मेरे धर्माचार्य तीर्थंकर प्रभु महावीर हैं। मैं इनका शिष्य हूं। बड़े-बड़े सम्राट्, धनकुबेर,देव देवियां इन्हें वन्दन करते हैं। संसार के कल्याण के लिए प्रभु महावीर गांव-गांव, नगर-नगर घूमते हैं।''

भगवान महावीर को देखते ही उसके पसीने छूट गए। उसने कहा- ''मैं इनके पास नहीं जाऊंगा।''

गौतम- ''यही तो हमारे गुरु व धर्माचार्य हैं।''

किसान- ''यदि ये ही तुम्हारे गुरु हैं, तो तुम्हीं रहो, मुझे ऐसा गुरु नहीं चाहिए। अब मेरा-तेरा कोई वास्ता नहीं।''

यह कह कर भयभीत किसान भाग गया। गणधर गौतम ने इस घटना का समाधान चाहा तो प्रभु महावीर ने बताया-उस अबोध किसान को तुझे देखकर असीम प्रेम जागृत हुआ और मुझे देखकर भागा। इसके पीछे पूर्वजन्म की घटना है। चाहे कोई तीर्थंकर हो, चाहे चक्रवर्ती, कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। यह किसान पूर्वभव से तुम्हारा मित्र चला आ रहा है। जब मैं त्रिपुष्ट वासुदेव के भव में था, तब तुम मेरे सारथी थे। यह किसान उस समय गुफा में रहने वाला सिंह था। जिसने उस गांव में रहने वालों का जीना हराम कर रखा था। त्रिपृष्ट राजकुमार के रूप में मैंने इस सिंह को समाप्त करने की जिम्मेवारी संभाली। तुम सारथी के रूप में मेरा रथ हांक रहे थे। मैं सिंह की गुफा में जा पहुंचा। मैंने उसे ललकारा। फिर हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गए। मैंने सिंह को मार डाला। जब इस सिंह की अन्तिम सांसें चल रही थीं, तब तुमने उसे प्रिय वचनों से सम्बोधित करते हुए कहा था- ''वनराज! मन में ग्लानि और खेद मत करो। तुम्हें मारने वाला कोई साधारण मनुष्य नहीं है। यह राजकुमार त्रिपुष्ट भी नरसिंह हैं। अतः सिंह की वीर मृत्यु एक नरसिंह के हाथों में हुई है। तुम शोक मत करो।''[२४] तुम्हारे इन्हीं प्रिय वचनों से इसे अन्त समय में इसे शान्ति मिली। आहत सिंह ने अहंमूलक प्रसन्नता में प्राण त्याग किया।

बस, यही कारण है कि यह किसान तुम्हारे द्वारा प्रतिबोधित हुआ। मेरे हाथों से मारे जाने के कारण मेरी शक्ल देखकर भागा। यह पूर्वजन्म का कर्मफल था। मैंने इसी कारण तुम्हें भेजा ताकि इस जीव का कल्याण हो।[२५] तुम्हारे सत्संग से इसके मन में सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया है। अब इसके मन में सम्यक् दर्शन की ज्योति जग गई है। अतः यह मिथ्यात्व में नहीं फंसेगा। याद रखो कि अन्तर्मुहूर्त्त का सम्यक् दर्शन प्राप्त करने वाला एक दिन मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। मैंने इसी योजना को कार्यरूप देने में तुम्हें भेजा था। इस कारण तुम सफल हुए।

प्रभु महावीर **वीतभय पत्तन** पहुंचे। राजा व प्रजा ने उनका इतना सन्मान-सत्कार किया कि उनका लंबा प्रवास वीतभय नगरी में हुआ। राजा ने धर्म-उपदेश सुनने के पश्चात् कहा- ''प्रभु! मैं अपने पुत्र को जब तक राज्य न दे दूं, आप वहां से न जाएं।''

प्रभु महावीर ने कहा- ''देवानुप्रिय! जो करना है शीघ्र करो, परन्तु शुभ काम में प्रमाद अच्छा नहीं।''

राजा घर आया। उसने चिन्तन किया- ''अगर मैं पुत्र को राज्य दे दूंगा, तो यह राज्य में आसक्त हो जाएगा। लम्बे समय तक संसार के भव-भ्रमण में भटकेगा। इस भव-भ्रमण का कारण मैं बन जाऊंगा। क्यों न मैं समस्त राज्य अपने भानजे केशी को दे दूं। कुमार पूर्ण सुरक्षित भी रहेगा।

राजा ने अपनी योजना अनुसार राज्य भानजे को देकर बड़े राजसी ठाट से दीक्षा ग्रहण की। उसने पंजाब का नाम ऊंचा किया। इस राजा के कारण प्रभु महावीर ने पंजाब के कई क्षेत्रों का स्पर्श किया। यहां की जनता को धर्म-उपदेश सुनने का अवसर मिला।

राजर्षि उदायन ने दीक्षा के पश्चात् लम्बा तप किया। उपवास से लेकर मास अवधि तक की तपस्या

से शरीर कृश व क्षीण हो गया। फिर रूग्ण हो गया। वैद्यों ने दही सेवन बताया। गोकुल में यह सब सहज रूप में उपलब्ध हो जाता है। मुनि ने उसी दृष्टि से उस ओर विहार किया।

एक बार राजर्षि उदयन मुनि बनकर वीतभय पतन पधारे। मन्त्रियों ने भानजे केशी को इतना भड़काया कि वह इस धार्मिक आगमन को षड्यन्त्र मानने लगा। राजर्षि उदायन को न तो ठहरने को स्थान दिया और न भोजन। केशी ने उनके भोजन में जहर मिला दिया, जिसे प्रभावती ने अपने देव-बल से दूर किया।

एक बार देवों की अनुपस्थिति में उन्हें विष-मिश्रित आहार मिला। यह आहार शरीर में फैल गया। मुनि ने समाधिमरण द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया। देवी प्रभावती ने उस वीतभय नगर को धूल का ढेर बना दिया। वहां एक कुम्हार ही बच पाया, जिसने राजर्षि उदायन की सेवा की थी। देवी उसे सिनपल्ली में ले गई जहां उस स्थान का नाम कुम्भकार पक्खेव पड़ा।[65] यह वर्षावास वाणिज्य ग्राम में सम्पन्न हुआ।

प्रभु महावीर ने वीतभय पत्तन में राजा उदायन का उद्धार किया। आपने आसपास के नगरों, गांवों में प्रचार किया। यह गांव अधिकांश रूप से पाकिस्तानी पंजाब में पड़ते हैं। वीतभय नगर से प्रभु महावीर सीधे वाणिज्यग्राम पधारे थे। वाणिज्यग्राम किस देश में पड़ता था, इसका उल्लेख नहीं है। यहीं प्रभु महावीर ने अपना वर्षावास बिताया। इस वर्षावास में किसी प्रमुख उल्लेखनीय घटना का वर्णन नहीं मिलता।

समीक्षा

पर जब प्रभु महावीर वीतभय पत्तन से वाणिज्यग्राम (विदेह देश) पधारे होंगे, तो कितना लम्बा विहार क्षेत्र होगा? निश्चय ही वह सिन्धु-सौविर के अन्तर्गत लम्बी दूरी तक न गए हों, पर वापसी की दूरी भी कम न रही होगी। फिर प्रभु महावीर तो ग्राम-ग्राम में धर्मदेशना देते थे। सम्भवतः हमें आज जो राजस्थान का मानचित्र प्राप्त होता है, वह तो (देशी) रियासतों का संग्रह है। राजस्थान के कई भाग मध्य प्रदेश, सिन्धु, वर्तमान पंजाब, उत्तर प्रदेश से लगते थे। आज भी श्री गंगानगर जिला पंजाब से लगता है। उस समय मुलतान, लाहौर, करनूर, गंधार आदि प्राचीन नगर थे। वहां भी प्रभु महावीर के भक्त थे। इसी प्रवास काल में भगवान महावीर ने अपने कुछ साधु-साध्वियों को इस क्षेत्र में छोड़ा होगा।

तभी पंजाब, हरियाणा, देहली के लोग जैनधर्मावलम्बी बनते गए। विदेशी आक्रमणकारियों ने यहां जैनधर्म को काफी हानि पहुंचाई है। फिर भी जैनधर्म यहां जीवंत रहा है।

अठारहवां चातुर्मास

वाणिज्यग्राम का चातुर्मास सम्पन्न कर प्रभु महावीर वाराणसी नगरी में पधारे। वाराणसी नगरी वैदिक, जैन व बौद्ध परम्परा का त्रिवेणी संगम था। यहीं प्रभु सुपार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे। करीब ही सिंहपुर (सारनाथ) में प्रभु श्रेयांसनाथ व चन्द्रपुरी में प्रभु चन्द्रप्रभ का जन्म हुआ था। वाराणसी से निर्ग्रन्थ परम्परा का रिश्ता बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसी कारण अनेक श्रावक व साधु इस नगर में निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म का प्रचार करते थे।

इसी नगरी में उस समय का राजा जितशत्रु भी प्रभु महावीर का भक्त था। जब उसे समाचार मिला कि प्रभु महावीर वाराणसी के कोष्टक चैत्य में विराजमान हैं, तो वह चतुरंगी सेना के साथ प्रभु महावीर

के धर्म-उपदेश सुनने आया। उसने प्रभु महावीर की वन्दना की। फिर उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। नगर में प्रभु महावीर के आगमन व धर्मोपदेश की चर्चा होने लगी। अनेक लोग श्रावक व श्रमण धर्म में दीक्षित हुए। इनमें प्रमुख व्यक्तियों की कथा इस प्रकार है-

चुलनीपिता की कथा

उपासकदशांगसूत्र में जिन प्रमुख श्रावकों का वर्णन आया है उसमें चुलनीपिता भी एक थे। वह चौबीस करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामी थे। उनकी पत्नी श्यामा थी। उनके आठ गोकुल थे। हर गोकुल में १०,००० गाएं थीं। दोनों पति-पत्नी ने प्रभु महावीर का उपदेश सुना, फिर श्रावक के बारह व्रतों को ग्रहण किया। वृद्धावस्था में पुत्र को घर का भार संभालकर वह अपनी पौषधशाला में धर्म-आराधना करने लगे।

एक रात्रि वह धर्म-चिन्तन कर रहे थे कि मध्य रात्रि में एक देव प्रकट हुआ। उसके हाथ में चमचमाती तलवार थी। उसने कहा-''यदि तुम शील आदि ग्रहण किए व्रतों को भंग नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारे सामने तुम्हारे तीनों पुत्रों के शरीरों को पहले इस तलवार से टुकड़े-टुकड़े करूंगा। फिर उन्हें गर्म कड़ाही में तल डालूंगा। उनके रक्त और मांस से तुम्हारे शरीर का सिंचन करूंगा।''

देवता की धमकियां भी श्रावक को धर्म-साधना से गिरा न सकीं। वह धर्म-साधना में लीन था। उधर देवता ने अपनी माया शुरू की। उसने अपनी शक्ति द्वारा तीनों पुत्रों को उसके सामने मारा, फिर हर पुत्र के शरीर के खण्ड-खण्ड कर पूर्व कथित रक्त से शरीर को सींचा।

चौथी बार देव गरजा। भयंकर अट्टहास करते हुए उसने कहा- ''अब भी तू शील आदि व्रत नहीं छोड़ेगा तो मैं तुम्हारी माता भद्रा को तुम्हारे सामने मारूंगा और उबलते तेल में उसका रक्त-मांस पकाकर तुम्हारे शरीर को सिंचित करूंगा।''

इस बार चुलनीपिता घबरा गया। उसमें माता का मोह भाव जागृत हुआ। वह सोचने लगा- 'यह पुरुष अनार्य है, दुष्ट है। पहले इसने मेरे तीनों पुत्रों को मेरी आंखों के सामने मार दिया। उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इस पुरुष से अपनी माता की रक्षा करूं।'

वह आसन से उठा और देवता को पकड़ने के लिए दौड़ा। देवता अन्तर्धान हो गया। अंधेरे में चुलनीपिता के हाथ में देव के स्थान पर खम्भा आया। वह उसे पकड़कर चिल्लाने लगा।

पुत्र की पुकार सुनकर माता भद्रा स्वयं आई। उसने कहा- तुम्हारे तीनों पुत्र और मैं पूरी तरह सुरक्षित हूं। लगता है तुम्हारी साधना में किसी देव ने उपसर्ग पैदा किया है। कषाय के उदय के कारण तुम उसे मारना चाहते हो। इस प्रवृत्ति से स्थूलप्राणातिपात विरमणव्रत और पौषधव्रत भंग हुआ है क्योंकि पौषधव्रत में तो अपराधी और निरपराधी दोनों प्रकार की हिंसा का त्याग है। इसलिए तुम दण्ड प्रायश्चित स्वीकार करो।''

चुलनीपिता परम मातृ भक्त था। इसलिए उसने अपने तीनों पुत्रों के मारे जाने की परवाह नहीं की। पर जब माता की बारी आई, तो वह देव को पकड़ने दौड़ा। उसने माता की आज्ञा को मानते हुए आलोचना द्वारा पापों का प्रायश्चित्त किया। ग्यारह प्रतिमाओं का पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।[२७]

सुरादेव श्रावक द्वारा व्रत ग्रहण

भगवान महावीर का समवसरण अभी वाराणसी के कोष्टक उद्यान में था। लोग अपनी आत्मा के